रमणिका गुप्ता

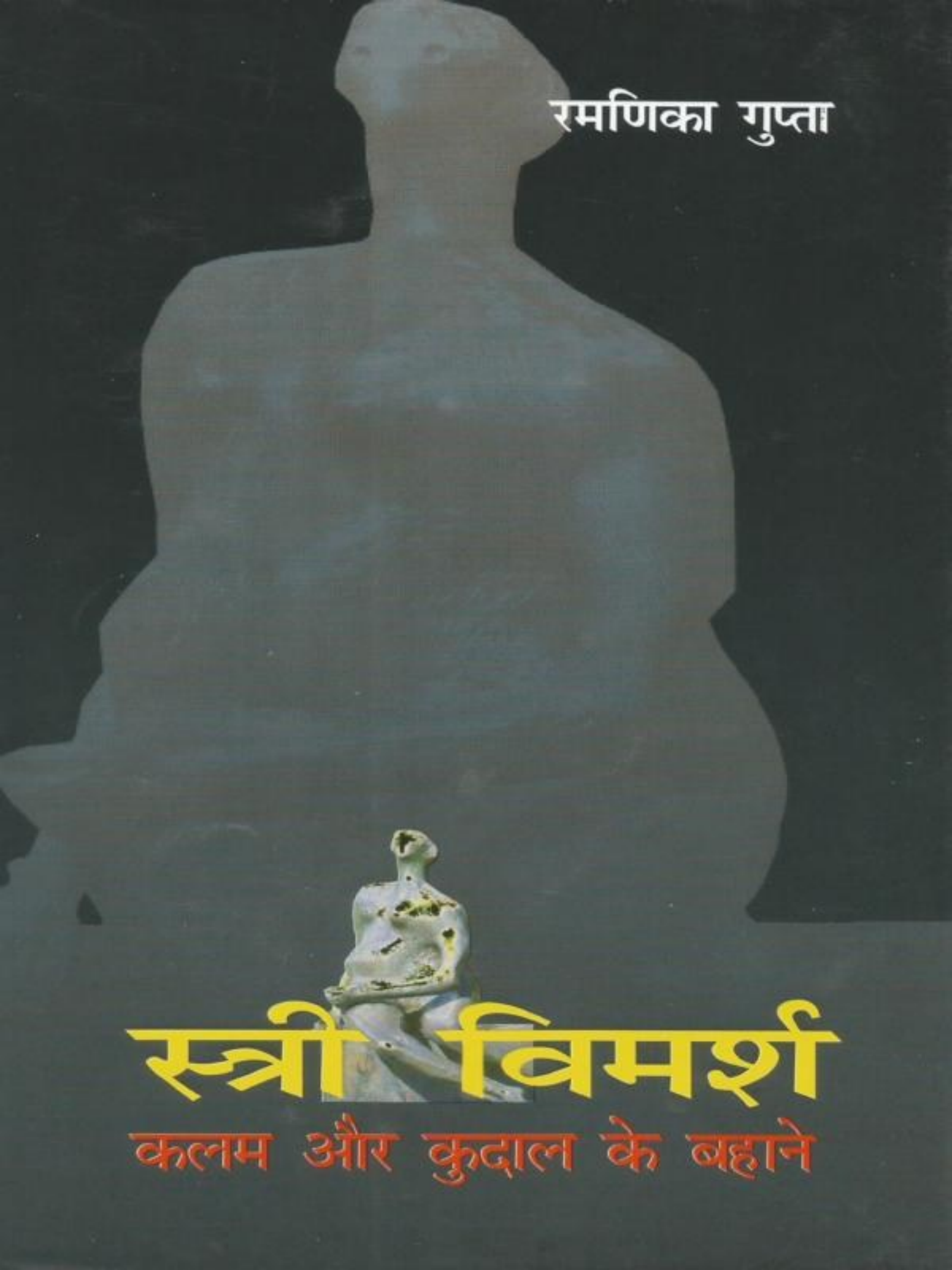

स्त्री विमर्श

कलम और कुदाल के बहाने

हालाँकि इन पचास वर्षों में शहरों तथा कुछ हद तक ग्रामीण इलाकों में भी स्त्रियाँ जागरूक हुई हैं। दरअसल, स्त्रियों में जागरूकता आजादी की लड़ाई के दौरान भी एक सार्थक और सोद्देश्य रूप में उजागर हुई थी, भले ही कुछ हद तक हुई हो। उसका प्रभाव आजादी के बाद भी चलता रहा। कम मात्रा में ही सही लेकिन औरतों का शिक्षित होना भी विभिन्न क्षेत्रों में उनके विकास का कारण बना। लेकिन यह विकास केवल गुणात्मक विकास था। गणनात्मक विकास में आज भी हमारा देश बहुत पीछे है क्योंकि आबादी के अनुपात में लड़कियों की शिक्षा में देश पिछड़ा है। देश में प्रचलित धार्मिक कुरीतियों, विकृतियों, अंधविश्वासों के कारण नारी मुक्ति आन्दोलन केवल शहरों में उच्च-वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित होकर रह गया। ग्रामीण क्षेत्रों में वह लगभग शून्य ही रहा है। हाँ, मजदूर संगठनों व समय-समय पर चलाए गए विस्थापितों व अन्य क्षेत्रीय आन्दोलनों के कारण कल-कारखानों और खदानों की मजदूर अथवा जंगलों व गाँवों की किसान औरतें काफी आगे आईं। लेकिन वह भी नेतृत्व के मामले में संकोची ही रहीं या पुरुषों द्वारा आगे नहीं आने दी गईं, कुछ अपवादों को छोड़कर।

हमारे साहित्य में शहर की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ नायिकाएँ बन रही हैं जो अच्छी बात है लेकिन जब तक कल-कारखानों, खेतों-खलिहानों और दूर-दराज के गाँवों और जंगलों में बसने खटने-कमाने वाली, जिन्दगी से जूझने वाली, फूलवा, जिरवा, सितवा, ललिता मौसी या अन्य औरतें साहित्य में नायिकाएँ बनकर नहीं उभरेंगी

शेष दूसरे पन्ने पर....

स्त्री विमर्श

कलम और कुदाल के बहाने

अनुक्रम

विमर्श

आजादी से आज तक 9
स्त्री-सशक्तिकरण के लिए जरूरी है आर्थिक स्वावलम्बन 13
स्त्री-मुक्ति आन्दोलन का रिश्ता जनतन्त्र से है दुर्गा सप्तशती से नहीं 19
स्त्री-आरक्षण टालने के बहाने 29
बलात्कार : मुक्त हों इस अपराधबोध से 43

कलम

स्त्री-अस्मिता के तेज से दीप्त शब्द 55
स्त्री-लेखन, स्त्री-दृष्टि : विकास की एक पड़ताल 70
हिन्दी कवयित्रियों का बहुआयामी रचना-संसार और स्त्री-चेतना 78
कुछ जानी-अनजानी कवयित्रियों का नया अंदाज 95
जहाँ से आरम्भ होती है घास 104
स्त्री केन्द्रित कहानी 109
नब्बे के दशक की कहानी और स्त्रियों की यंत्रणा 115

कुदाल

खदानों एवं जनजाति क्षेत्रों में स्त्री-मजदूरों की समस्याएँ एवं समाधान 123
कोल इंडिया में महिलाओं की दुर्गति 145
कामकाजी स्त्रियों के प्रति मानसिकता में बदलाव
श्रमिक संघों की भूमिका 154

विमर्श

आजादी से आज तक

स्त्री-सशक्तिकरण के लिए जरूरी है आर्थिक स्वावलम्बन

स्त्री-मुक्ति आन्दोलन का रिश्ता जनतन्त्र से है दुर्गा सप्तशती से नहीं

स्त्री-आरक्षण टालने के बहाने

बलात्कार : मुक्त हों इस अपराध-बोध से

आजादी से आज तक

सच है कि आजादी के पचास वर्षों में हमने एक प्रधानमन्त्री, तीन मुख्यमन्त्री और दो-तीन दर्जन मन्त्री बनने का मौका स्त्रियों को दिया। लेकिन यह भी सच है कि आज भी हमारे देश में अमीना बेची जाती है, भंवरी बाई, फूलन देवी आदि कई स्त्रियाँ रोज-ब-रोज बलात्कार की शिकार होती हैं। आलू चुराने के एवज में समस्तीपुर (बिहार) में दलित स्त्री नंगी की जाती है। प्यारी को उसका पति जुए में हार देता है, विजेता के साथ जाने से नकारने पर उसकी नाक काट देता है। हेंदेगढ़ा में एक चमार लड़के से प्रेम विवाह करने पर मालती नंगी कर दागी जाती है और महावीर को पत्थरों से कुचलकर मार दिया जाता है।

हालाँकि इन छप्पन वर्षों में शहरों तथा कुछ हद तक ग्रामीण इलाकों में भी स्त्रियाँ जागरूक हुई हैं। दरअसल, स्त्रियों में आजादी की लड़ाई के दौरान भी जागरूकता एक सार्थक और सोद्देश्य रूप में उजागर हुई थी, भले ही कुछ हद तक हुई हो। उसका प्रभाव आजादी के बाद भी चलता रहा। कम मात्रा में ही सही लेकिन औरतों का शिक्षित होना भी विभिन्न क्षेत्रों में उनके विकास का कारण बना लेकिन यह विकास केवल गुणात्मक विकास था। गणनात्मक विकास में आज भी हमारा देश बहुत पीछे है क्योंकि आबादी के अनुपात में लड़कियों की शिक्षा में देश पिछड़ा है। देश में प्रचलित धार्मिक कुरीतियों, विकृतियों, अंधविश्वासों के कारण नारी-मुक्ति आन्दोलन केवल शहरों में उच्च-वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित होकर रह गया। ग्रामीण क्षेत्रों में वह लगभग शून्य ही रहा है। हाँ, मजदूर संगठनों व समय-समय पर चलाए गए विस्थापितों व अन्य क्षेत्रीय आन्दोलनों के कारण कल-कारखानों और खदानों की मजदूर अथवा जंगलों व गाँवों की किसान औरतें काफी आगे आईं लेकिन नेतृत्व के मामले में कुछ अपवादों को छोड़कर वे भी संकोची ही रहीं या पुरुषों द्वारा आगे नहीं आने दी गईं।

साहित्य में भी एक-दो अपवाद छोड़कर सम्भ्रान्त स्त्रियाँ ही आगे आईं और उन्होंने रूढ़ियों, परम्पराओं और विकृत मानसिकताओं को तोड़ते हुए यौन-शोषण और निषेधों के खिलाफ जिहाद छेड़ा। तथाकथित पिछड़ी या निम्न कही जाने वाली

जातियों की औरत इस मामले में इन तथाकथित उच्च-जातीय अथवा मध्यम-वर्गीय स्त्रियों से सदैव कुछ अधिक आजाद रही हैं क्योंकि वह कमाती भी रही है। वह न सती होती थी, न ही किसी मर्द नाम के खूंटे से बँधकर उसके मरने के बाद भी आजन्म विधवापन का बोझ ढोती थी। इधर बढ़ते उपभोक्तावाद, अस्मिता की लड़ाई या मूल्यों के विघटन की आंधी में सब गड्डमगड्ड हो गया। जो स्त्रियाँ सीमित ही सही पर सामाजिक स्तर पर कुछ आजाद थीं, वे भी मध्यम-वर्गीय मानसिकता की शिकार होने लगीं। उनके परिवार भी इसके अपवाद नहीं रहे।

मुझे याद है जब मैंने ट्रेड यूनियन के अपारम्परिक (नॉन-ट्रेडीशनल) क्षेत्र में कदम रखा और कोयला खदानों में ठेकेदारों और माफिया के खिलाफ मैदान में उतरी तो कोयला खदानों की हजारों स्त्रियों ने जिस बहादुरी से उस माफियातन्त्र का मुकाबला किया था वैसा उनके मर्द भी नहीं कर पाए थे। तथाकथित सम्भ्रान्त अथवा मुक्त कही जाने वाली शहरी स्त्रियाँ उस प्रकार के मुकाबले के बारे में सोच भी नहीं सकतीं, उनमें भाग लेना तो दूर की बात है। मेरी कहानियों और उपन्यासों की जीवन्त पात्र—प्यारी, ललिता, चम्पा, जिरवा या जिरवा माय, सीता और मौसी—भीषण परिस्थितियों से गुजर कर भी डटी रहीं और उन्होंने अपनी पहचान बनाई। सन् 1970 की एक और घटना मुझे याद आती है जब मैं ठेकेदारों के द्वारा किए गए हमले में कुजू से घायल होकर हजारीबाग लाई गई तो पन्ना बाई नाम की हमारी एक स्त्री नेता ने लगभग बीस हजार मजदूरों को लेकर हजारीबाग शहर को तीन दिन तक घेरे रखा और अपराधियों के पकड़े जाने के बाद ही घेराबन्दी उठाई। टूटी-फूटी भाषा में भाषण करती, लांग वाली नौ गजी साड़ी और नाक में दोनों तरफ लौंग तथा गले में हंसुली पहने उस सतनामी दलित स्त्री को कोई भी आतंकित नहीं कर सका—न माफिया, न पुलिस और न ही प्रशासन।

इसी प्रकार केदला चौक में सन् 1971 के दिसंबर माह में जब हम लोगों ने कोलियरी के सरकारीकरण के लिए अनिश्चितकालीन हड़ताल की शुरुआत की और खदानें बन्द कर दीं तो पुलिस, प्रशासन और ठेकेदारों ने मिलकर हमें आतंकित करने की चेष्टा की। वे केदला चौक से मुझे घसीटते हुए ले जा रहे थे तो तीजमती बाई ने स्त्रियों का एक दल लेकर मुझे केवल छुड़ाया ही नहीं बल्कि दारोगा को थप्पड़ भी मारा और मजिस्ट्रेट को चुनौती दी कि अगर हिम्मत है तो गोली चलाए। उन्हें डटा देखकर भागे जा रहे मजदूर भी वापस लौट आए थे। लेकिन यही तीजमती बाई कुछ अरसे बाद उसके पति तथा उसकी जाति की पंचायत द्वारा डायन घोषित कर लाठियों से पीट-पीटकर मार दी गई। दुर्भाग्यवश मैं उन दिनों बाहर थी। आज तक मैं इस घटना को भूल नहीं पाई।

नेतृत्व में इतनी सक्षम होने पर भी स्त्रियाँ क्यों नहीं नीति-निर्णायक मुद्दों पर उसी अनुपात में आगे आ पाईं? इसका एक कारण उनकी अशिक्षा, हीन-भावना,

परिवार और घर के प्रति नाहक मोह तथा अपने विकास के प्रति उपेक्षा भाव है तो दूसरा बड़ा कारण पुरुषों द्वारा उन्हें नेतृत्व के काबिल न समझना, उन्हें गम्भीरता से न लेना-या घर के काम में न केवल उलझाए रखना बल्कि उसके ऐसे कामों में असहयोग करना भी है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों में औरतों के आगे न आने का यही कारण है। *आज की व्यवस्था में वह लता बनकर वृक्ष से लिपट जाए तो वृक्ष की फुनगी तक पहुँच जा सकती है लेकिन वही औरत अगर पेड़ बनकर स्वयं खड़ी हो जाए तो सब लोग कुल्हाड़ी लेकर उसे काटने दौड़ते हैं।*

यह सही है कि इन 50 वर्षों में भारत में स्त्रियाँ बड़े-बड़े ओहदों पर पहुँच गई हैं—नेता, मन्त्री, पायलट, मुख्यमन्त्री, प्रधानमन्त्री, न्यायधीश, ट्रक ड्राइवर, अंतरिक्ष यात्री आदि लेकिन देश की लगभग 95 प्रतिशत स्त्रियाँ अभी भी अपने जड़ तथा रूढ़ दायरे तोड़कर बाहर नहीं आ पाई हैं। कोयला खदानों के सात लाख मजदूरों में चली छंटनी की तलवार से कुछेक हजार की संख्या में ही मुश्किल से बची हैं स्त्री-मजदूर। बाकी सबकी छुट्टी कर दी गई है। सी. सी. एल. की क्रमशः नॉर्थ कर्णपुरा और हजारीबाग खदानों में केवल एक आदिवासी स्त्री शावल ऑपरेटर, एक ड्रिल ऑपरेटर तथा एक शावल ई.पी. हैल्पर बन पाई है, बाकी अधिकांश पीस-रेटिड स्त्री-मजदूर हैं। उनकी तरक्की ज्यादा-से-ज्यादा पानी पिलाने या सिक्युरिटी गार्ड में की जाती है जबकि ये स्त्रियाँ पंप चलाने, शावल चलाने के लिए भी उत्सुक हैं।

दरअसल जब तक स्त्रियों को शिक्षित कर उन्हें आर्थिक स्तर पर स्वावलम्बी बनाकर हर क्षेत्र में विकास का अवसर नहीं मिलेगा तब तक कुछ स्त्रियों की प्रगति को भारत की सभी या अधिकांश स्त्रियों की प्रगति नहीं माना जा सकता।

हमारे साहित्य में शहर की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ नायिकाएँ बन रही हैं जो अच्छी बात है लेकिन जब तक कल-कारखानों, खेतों-खलिहानों और दूर-दराज के गाँवों और जंगलों में बसने, खटने-कमाने वाली, जिन्दगी से जूझने वाली, फुलवा, जिरवा, सितवा, ललिता, मौसी या अन्य औरतें साहित्य में नायिकाएँ बनकर नहीं उभरेंगी तब तक यह साहित्य भी एकांगी रहेगा। यह तभी सम्भव होगा जब खटने-कमाने वाली मेहनतकश स्त्रियाँ कलम भी संभालेंगी ग्रेस कुजूर की तरह या फिर निर्मला पुतुल की मानिन्द—जिसके लिए जरूरी है इनका शिक्षित होना। शिक्षा न केवल इन्हें आत्मविश्वासी बनाएगी बल्कि इनमें जागरूकता की लहर भी फैलाएगी। हमारी स्त्रियों के उपभोक्तावादी तन्त्र द्वारा शिकार बनाये जाने का खतरा भी है, जिसे इस तथाकथित सूचना-क्रान्ति ने शहरों से गाँवों की तरफ फैलाना शुरू कर दिया है। शहर और गाँव दोनों की स्त्रियों को इससे बचना होगा ताकि वे *सम्पत्ति* के कुएँ से निकलकर बिकने वाली *चीज* की खाई में न गिर जाएँ। इस सबके बावजूद शुभ यह है कि भारतीय स्त्रियाँ अब चेत रही हैं। वोट के अधिकार ने भी इनमें राजनीतिक चेतना जगाकर अहम भूमिका निभाई है तो शिक्षा एवं सूचना के प्रसार

ने भी। इसलिए हताशा में पुरुषसत्ता द्वारा उनके शोषण हेतु हिंसात्मक कारवाइयों में बढ़ोत्तरी हो रही है, हालाँकि वे मुकाबला करने लगी हैं। आज वे मुकाबिल हैं अपने परिवार और बाहरी समाज के भी। प्रायः औरतें दोहरे-तिहरे शोषण की शिकार होती हैं—औरत होने के नाते, अशिक्षित और गरीब होने के नाते। दलित औरतें तो दलित होने के नाते भी शोषित होती हैं। औरतों को अपनी मुक्ति की लड़ाई खुद ही लड़नी होगी, बाहर से कोई उनका मददगार नहीं हो सकता। आज जब स्त्रियाँ मुखिया और सरपंच बनने लगी हैं तो उन्हें खुद भी यह कोशिश करनी होगी कि वे इन पदों को स्वयं संभालें, प्रॉक्सी में मुखियागिरी न करें। ऐसी स्त्रियाँ जिन्होंने अपने पति या पुरुष संरक्षक का 'रबर-स्टांप' बनने से इनकार किया, उनका विरोध हो रहा है। इनसे घबरा या डरकर अथवा हारकर हथियार डालने से बेहतर है डटकर मुकाबला करना। एक दलित स्त्री सरपंच को तो 15 अगस्त को झंडा फहराने के अपराध में नंगा तक कर दिया गया था। ये तो संघर्ष की राह के कांटे हैं जिन्हें हमें अपनी मुक्ति के लिए बीनना ही पड़ेगा।